इकाई–25: आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का साहित्यिक योगदान

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

25.1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की लेखन कुशलता

25.2 आलोचक रामचन्द्र शुक्ल

25.3 आचार्य शुक्ल के समीक्षा सिद्धांत

25.4 सारांश (Summary)

25.5 शब्दकोश (Keywords)

25.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

25.7 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- आचार्य रामचंद्र शुक्ल की लेखन कुशलता को जानने में;
- आलोचक के रूप में शुक्ल जी की भूमिका समझने में;
- रामचंद्र शुक्ल जी के समीक्षा सिद्धांतों की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

परिष्कार और परिमार्जन का कार्य समाप्त हो चुका था। अब हिन्दी गद्य साहित्य को विशदता और गंभीरता की आवश्यकता थी। सन् 1920-21 के आसपास बाबू श्यामसुंदरदास ने 'साहित्यालोचन' प्रस्तुत कर इस दिशा में पदन्यास किया था, किंतु हिन्दी समीक्षा के लिए एक मान्य एवं प्रौढ़ मानदंड और प्रभावशाली पद्धति की आवश्यकता थी। इसकी पूर्ति शुक्ल जी के व्यक्तित्व ने की।

25.1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की लेखन कुशलता

शुक्ल जी समीक्षा-क्षेत्र में आने के पहले साहित्य के अन्य क्षेत्रों में भटक चुके थे। संपादक, अनुवादक, कवि, निबंध लेखक, कहानीकार आदि कई रूपों में उनका व्यक्तित्व अभिव्यक्त हो चुका था। विफलता उन्हें कहीं नहीं मिली। संपादक जीवन का अनुभव उन्हें विद्यार्थी जीवन में ही **बदरीनारायण चौधरी** 'प्रेमघन' की 'आनन्दकादम्बिनी' में कार्य करते हुए हुआ था। 'काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (मासिक) के संपादन का गुरुतर दायित्व भी कुछ दिनों के लिए शुक्ल जी को उठाना पड़ा था। शुक्ल जी ने अंग्रेजी और बंगला से सफल अनुवाद भी किया था। गद्य में भी और पद्य में भी। बंगला के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'शशांक' का अनुवाद तो हिन्दी संसार कदाचित् नहीं

Scanned by CamScanner

नोट

भूलेगा। कवि के रूप में शुक्ल जी का विवेचन यहाँ अभीष्ट नहीं, किंतु यह निश्चित है कि इस क्षेत्र में भी वे विफल नहीं कहे जा सकते।

निबंध लेखक और आलोचक एवं शुक्ल के व्यक्तित्व एक दूसरे के पूरक हैं। निबंधों में उनकी समीक्षा के सिद्धांत निर्मित हुए हैं और आलोचनाओं में उन्हें व्यावहारिक रूप मिला है। इन दोनों क्षेत्रों में आपका स्थान आज भी निर्विवाद रूप से सर्वश्रेष्ठ है।

25.2 आलोचक रामचंद्र शुक्ल

आलोचक शुक्ल जी की सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों प्रकार की आलोचनाएँ हमारे सम्मुख हैं। आपका सैद्धांतिक समीक्षा ग्रंथ **रसमीमांसा** रस-चिंतन के क्षेत्र में स्वयं अपना प्रतिमान है। आपकी व्यावहारिक आलोचना का प्रौढ़तम रूप 'तुलसी' और 'जायसी' ग्रंथावली की भूमिकाओं 'भ्रमरगीतसार' की भूमिका तथा 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में प्रकट हुआ है। शुक्ल जी की समीक्षा का सैद्धांतिक आधार भारतीय 'रसवाद' है। शुक्ल जी ने इसे सर्वथा पूर्ण मानदंड माना है। **आपने जीवन की क्रिया-भूमि, काव्य की भावभूमि और समीक्षा की विचारभूमि में अद्भुत सामंजस्य स्थापित किया है।** आपके सिद्धांत जीवन से गृहीत हैं। काव्य में उनको परीक्षित किया गया है और अंततः विवेक की कसौटी पर कसकर उन्हें सिद्धांत रूप में उपस्थित किया गया है। समीक्षा का जो सिद्धांत इन तीनों में सामंजस्य नहीं ला सकता, वह आपको मान्य नहीं। सामंजस्य की यह पूर्णता भारतीय 'रसवाद' में है। ऐसी आपकी मान्यता थी, जो कभी बदली नहीं।

आचार्य शुक्ल ने 'रसवाद' को आध्यात्मिक भूमि से उतारकर वैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित किया। उसे बौद्धिक चिंतन की दृष्टि से अधिक पूर्ण और विश्वसनीय बनाया। 'रस' के प्रवर्तक भावों को विशद, सूक्ष्म और गंभीर मनोवैज्ञानिक विवेचन किया। उनको नये ढंग से परिभाषित और वर्गीकृत किया। भारतीय और पाश्चात्य काव्य सिद्धांतों का अनुशीलन किया और 'रस' को काव्य की आत्मा स्वीकार करके शेष समस्त मान्यताओं को या तो इसी के भीतर समाविष्ट किया या अनुचित प्रमाणित किया। वस्तुतः उन्होंने 'रस सिद्धांत' को आधुनिक युग की आकांक्षा के अनुकूल परिभाषित करके पुनः प्रतिष्ठित किया। उनका समीक्षा सिद्धांत एक प्रकार से रस सिद्धांत की व्याख्या के रूप में ही विकसित हुए हैं। शुक्ल जी ने सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों ही प्रकार की समीक्षाओं के माध्यम से रस सिद्धांत की ही प्रतिष्ठा की। उन्होंने सौंदर्यानुभूति पर विचार करते हुए उसे भी रसानुभूति के स्तर पर ही समझाने की चेष्टा की। आचार्य शुक्ल के आलोचक रूप को समझाने के लिए उनके समीक्षा सिद्धांतों पर थोड़ा विस्तार से विचार करना होगा।

टास्क 'आलोचक' के रूप में शुक्ल जी ने क्या कीर्तिमान स्थापित किया है?

25.3 आचार्य शुक्ल के समीक्षा सिद्धांत

आधुनिक हिन्दी-समीक्षा के विकास क्रम में आचार्य **पं. रामचंद्र शुक्ल** का व्यक्तित्व अनेक दृष्टियों से अप्रतिम है। वे सच्चे अर्थों में एक पथिकृत आचार्य हैं। उच्च कोटि की समीक्षा के लिए विस्तृत अध्ययन, सूक्ष्म अन्वीक्षण बुद्धि और मर्मग्राहिणी प्रज्ञा अपेक्षित है। आचार्य शुक्ल के आलोचक व्यक्तित्व में उपर्युक्त तीनों ही विशेषताओं का सामंजस्य लक्षित होता है। वे हिन्दी के पहले आलोचक हैं, जिन्होंने भारतीय काव्य शास्त्र की अतल गहराई में प्रवेश करके उसकी महत्ता, सारवत्ता, व्यापकता और उपयोगिता के प्रति पूर्ण विश्वास व्यक्त किया। उन्होंने घोषित किया कि **"शब्दशक्ति, रस और अलंकार, ये विषय-विभाग काव्य समीक्षा के लिए इतने उपयोगी हैं कि इनको**

Scanned by CamScanner

अंतर्भूत करके संसार की नयी पुरानी सब प्रकार की कविताओं की बहुत ही सूक्ष्म, मार्मिक और स्वच्छ आलोचना हो सकती है।" उनका सिद्धांत था कि "हमें अपनी दृष्टि से दूसरे देशों के साहित्य को देखना होगा, दूसरे देशों की दृष्टि से अपने साहित्य को नहीं"। अपनी दृष्टि या भारतीय दृष्टि के सम्यक् बोध के लिए उन्होंने नाट्यशास्त्र, काव्यादर्श, काव्यालंकार, अभिनवभारतीय, काव्यप्रकाश, ध्वन्यालोक, दशरूपक, काव्यमीमांसा, साहित्यदर्पण, रसतरंगिणी, रसगंगाधर आदि अनेक ग्रंथों का अनुशीलन किया था। उनका कहना था "रस निरूपण पद्धति का आधुनिक मनोविज्ञान आदि की सहायता से खूब प्रसार और संस्कार करना पड़ेगा। इस पद्धति की नींव बहुत दूर तक डाली गयी है।" कहना न होगा कि इस नींव की गहराई का अनुभव उन्होंने स्वयं भली-भाँति किया था और आधुनिक मनोविज्ञान की सहायता से उसे व्यापक आधार पर प्रतिष्ठित करने की चेष्टा भी की थी। 'रस-सिद्धांत' के अतिरिक्त आचार्य शुक्ल ने रीति, अलंकार, ध्वनि, गुण, वक्रोक्ति और औचित्य सिद्धांतों का अध्ययन भी किया था किंतु काव्य में इनकी स्थिति उन्हें वहीं तक मान्य थी, जहाँ तक ये रस के पोषक, उपकारक, आश्रित या रक्षक बनकर उपस्थित हों। उनके अनुसार काव्य का आभ्यंतर स्वरूप या आत्मा 'भाव' या 'रस' है। अलंकार उसके बाह्य स्वरूप हैं। 'रीति' केवल संघटना है, शरीर का अंग-विन्यास है। रस और गुण का संबंध 'अन्वय-व्यतिरेक संबंध' है। 'ध्वनि' भी काव्य की आत्मा नहीं है क्योंकि इसमें अतिव्याप्ति दोष है। इसमें अलंकारध्वनि और वस्तुध्वनि भी आ जाती है। वक्रोक्ति भी काव्य में रसाश्रित होकर ही सार्थक होती है, स्वतन्त्र रूप में नहीं। औचित्य रस का रक्षक है। उसकी अनुपस्थिति में रस, रसाभास के स्तर पर पहुँच जाता है। इस प्रकार आचार्य शुक्ल की समीक्षा का आधार भारतीय रस सिद्धांत है।

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. निबंध लेखक और आलोचक एवं शुक्ल के व्यक्तित्व एक-दूसरे के ..... हैं।
2. शुक्ल जी की समीक्षा का सैद्धांतिक आधार भारतीय ..... है।
3. हृदय की मुक्तावस्था ..... कहलाती है।

रस को परिभाषित करते हुए आचार्य ने कहा है–

"हृदय की अनुभूति ही साहित्य में 'रस' और 'भाव' कहलाती है।"

× × × ×

"हृदय के प्रभावित होने का नाम ही रसानुभूति है।"

× × × ×

"जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान-दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से प्रकट है कि शुक्ल जी की दृष्टि में **हृदय की मुक्तावस्था, प्रभावित होने की दशा, लोक-हृदय में लीन होने की दशा** और **अनुभूतिदशा** लगभग एक ही है। इस मनोदशा तक पहुँचना ही काव्य का चरम लक्ष्य है। यह गोचर जगत् अनेक रूपात्मक है और मानव-हृदय अनेक भावात्मक। इन आंतरिक भावों और बाह्य रूपों में सामंजस्य स्थापित करने में ही कवि की काव्य साधना की सार्थकता मान्य हो सकती है। इस सामंजस्य के द्वारा ही अर्थात् भावों के अनुकूल विषय और विषय के अनुकूल भाव का चित्रण करके ही कवि अपने कर्म विधान को पूरा करता है। शास्त्रीय दृष्टि से इसे ही 'आलम्बन' और 'आश्रय' की यथोचित प्रतिष्ठा कहा जा सकता है। आश्रय तो कोई सहृदय मनुष्य ही हो सकता है किंतु आलम्बन रूप में हम 'मानव' तथा 'मानवेतर समस्त चराचर' का चित्रण कर सकते हैं। तात्पर्य यह कि पहले तो कवि स्वयं इस अनेक रूपात्मक जगत् के (जिसमें मानव और मानवेतर प्रकृति दोनों की आती है) मार्मिक तथ्यों में अपने हृदय को लीन करता हुआ अनुभूति ग्रहण करता है और

Scanned by CamScanner

नोट

फिर कल्पना द्वारा अपनी उस अनुभूति को व्यक्त करता है। यह अभिव्यक्ति तीन प्रकार से हो सकती है–(1) जहाँ आलम्बन मात्र का विशद वर्णन किया जाए, (2) जहाँ आलम्बन उपेक्षित हो और कवि केवल भाव व्यंजना में ही लीन हो, (आचार्य शुक्ल इसे भाव प्रदर्शक काव्य कहते हैं और आधुनिक गीत-मुक्तकों को इसी कोटि में रखते हैं)। (3) जहाँ आश्रय, आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव और संचारी भाव सभी चित्रित हों। आचार्य शुक्ल ने आश्रय, आलम्बन, उद्दीपन इन तीनों को ही 'विभाव' के अंतर्गत रखा है। 'अनुभाव' आश्रय की चेष्टाएँ हैं। उन्होंने इस विभावपक्ष को काव्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना है क्योंकि रस का आधार खड़ा करने वाला तत्व यही है। वे तो यहाँ तक कहते हैं–"मैं आलम्बन मात्र के विशद वर्णन को श्रोता में रसानुभव (भावानुभव सही) उत्पन्न करने में पूर्ण समर्थ मानता हूँ।" आचार्य शुक्ल की दृष्टि में विभाव, अनुभाव और संचारी भावों की एकत्र स्थिति होने पर भी 'रसपरिपाक' होना आवश्यक नहीं है। कभी-कभी इनको एकत्र करके रस की शर्त पूरी की जाती है। इस परिपाक के लिए मूल वस्तु है विभाव विधान। इसमें कवि को पूरी सतर्कता बरतनी चाहिए। विभाव में आलम्बन प्रधान वस्तु है। आलम्बन का लोकधर्मी होना नितान्त आवश्यक है। उदाहरण के लिए वीर रस की निष्पत्ति के लिए आलम्बन रूप में ऐसे वीर पुरुष का चित्रण करना अधिक उचित होगा, जिसकी वीरता लोक विश्रुत एवं लोक समर्थित हो। इसी प्रकार रौद्र रस के वर्णन में आलम्बन का चित्रण इस रूप में होना चाहिए कि वह मनुष्यमात्र के क्रोध का पात्र हो सके। आलम्बन के लोकधर्मी होने पर ही विभाव विधान की पूर्णता मानी जा सकती है। विभाव विधान की महत्ता और आलम्बन के लोकधर्मी स्वरूप की अनिवार्यता पर बल देते हुए भी आचार्य ने पूर्ण रस-व्यंजना के लिए कवि आलम्बन तथा सहृदय तीनों की आनुभूतिक एकता को आवश्यक माना है। वे कहते हैं–"जहाँ आचार्यों ने पूर्ण रस माना है, वहाँ तीन हृदयों का समन्वय चाहिए। आलम्बन द्वारा भाव की अनुभूति प्रथम तो कवि में चाहिए फिर उसके वर्णित पात्र में और फिर श्रोता या पाठक में। विभाव द्वारा जो **साधारणीकरण** कहा गया है वह तभी चरितार्थ हो सकता है।" जो लोग यह समझते हैं कि आचार्य शुक्ल ने केवल आलम्बनत्वधर्म के साधारणीकरण की बात कहकर कवि और पाठकों के पक्ष की उपेक्षा की है, उन्हें उपर्युक्त कथन पर ध्यान देना चाहिए। आलम्बन के लोकधर्मी स्वरूप पर बल देने का कारण यह था कि आचार्य शुक्ल उसे ही कवि-हृदय में अनुभूति का उद्रेक करने वाला तत्व मानते थे। तुलसी के हृदय में रामभक्ति का उद्रेक सीतापति के (राम) शील स्वभाव को देखसुन कर ही हुआ था और वे चाहते थे कि सबके हृदय में वैसी ही अनुभूति हो। आदि कवि बाल्मीकि ने भी नारद द्वारा इक्ष्वाकुकुलोद्भव राम की लोक-विश्रुत गाथा सुनकर और उससे अभिभूत होकर ही रामायण में उनके लोकधर्मी चरित्र की अवतारणा की थी। कवि भूषण के चित्त को काव्याभिमुख करने वाला प्रेरक तत्व शिव चरित्र ही था। जिस प्रकार उपास्य के लोक-पावन विरुद्ध से आकृष्ट होकर उपासक उसके स्वरूप में अपने हृदय को लीन करने के लिए प्रेरित होता है, उसी प्रकार आलम्बन का लोक समर्थित व्यक्तित्व कवि हृदय को प्रेरित करके उसे कवि कर्म में लीन करता है। श्रोता या पाठक भी ऐसे ही लोकधर्मी आलम्बन के प्रति निष्ठावान् होकर उसके साथ अपने हृदय का सामंजस्य स्थापित करता है। कवि अपने तप-बल (शब्द साधना) से जिस किसी आलम्बन को सहृदय पाठक के हृदय में प्रविष्ट कराना चाहेगा, तो उसकी स्थिति 'त्रिशंकुवत्' होगी।

25.4 सारांश (Summary)

- शुक्लजी ने अंग्रेजी और बंगला से सफल अनुवाद भी किया था। गद्य में भी और पद्य में भी। बंगला के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'शशांक' का अनुवाद तो हिन्दी संसार कदाचित् नहीं भूलेगा।
- आपका सैद्धांतिक समीक्षा ग्रंथ रसमीमांसा रस-चिंतन के क्षेत्र में स्वयं अपना प्रतिमान है। आपकी व्यावहारिक आलोचना का प्रौढ़तम रूप 'तुलसी' और 'जायसी' ग्रंथावली की भूमिकाओं 'भ्रमरगीतसार' की भूमिका तथा 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में प्रकट हुआ है।
- आधुनिक हिन्दी-समीक्षा के विकास क्रम में आचार्य पं. रामचंद्र शुक्ल का व्यक्तित्व अनेक दृष्टियों से अप्रतिम है। वे सच्चे अर्थों में एक पथिकृत आचार्य हैं। उच्च कोटि की समीक्षा के लिए विस्तृत अध्ययन, सूक्ष्म अन्वीक्षण बुद्धि और मर्मग्राहिणी प्रज्ञा अपेक्षित है।

Scanned by CamScanner